GYANBODH
An International Multidisciplinary Peer Reviewed Journal
ISSN:3048-9792
Volume: 3
Issue: 2
March - April: 2026

व्यक्तित्व निर्माण में योग की भूमिका

राकेश कुमार

MA 4th Sem, Roll No.MA YOGA 25004

जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय चित्रकूट, उत्तर प्रदेश

जितेन्द्र प्रताप सिंह

सहायक आचार्य, योग विभाग, जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय चित्रकूट, उत्तर प्रदेश

शोध–सारांश

व्यक्तित्व एक सतत विकासात्मक प्रक्रिया है। व्यक्तित्व का निर्माण आद्योपांत चलता रहता है। जैसे–जैसे हम जीवन की प्रक्रिया में नवीन उपादानों के द्वारा कुछ न कुछ सीखते और उसके सार का जीवन में नियमन करते चलते हैं, वैसे–वैसे हमारे व्यक्तित्व में परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता रहता है। सबमें कुछ जन्मजात जैविक–प्रक्रियाएं होती हैं। जन्मजात जैविक–प्रक्रियाओं से युक्त व्यक्ति जिस समाज से स्वयं को बद्ध करता है वह उसके प्रभावों की भी ग्रहण करता हुआ चलता है। इस तरह से जन्मजात जैविक–प्रक्रियाओं एवं हमारे समाज इन दोनों की अंतःक्रियाओं के फलस्वरूप हमारा व्यक्तित्व सम्मुख आता है। योग–दर्शन की ऐसी मान्यता है कि तप के द्वारा क्लेश व कर्म के परिणामस्वरूप भीतर उपस्थित संस्कार सहित सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। प्रारब्ध, संचित एवं क्रियमाण के भस्म होने से नवीन कर्म की अवधारणा और पुराने संस्कारों से च्युत होने पर यम, नियम, आसन की पृष्ठभूमि पर नवीन अनुशासन से युक्त व्यक्तित्व–रूपी सूर्य का उदय होता है, जो योग, अभ्यास, विद्या की प्रकीर्णता से चहुंदिशि को अपने उत्तम–प्रकाश से आलोकित करता है। योग अनुशासन और अन्तर्बन्धता का प्रारूप है। वह बहिरंग–साधनों से आकर्षित होने की जगह अंतरंग–साधना की ओर आकर्षित करता है। वह अन्य से तुष्टि और प्राप्ति की जगह स्व–तुष्टि और स्व–प्राप्ति के साथ–साथ स्वानंद की ओर ध्यानाकर्षण करता है। स्वानुशासन से बद्ध, लोभ, मोह, काम क्रोध से विलग हुआ व्यक्ति न सिर्फ स्व–व्यक्तित्व से चमकता है बल्कि अपनी आभा से लोक,

GYANBODH
An International Multidisciplinary Peer Reviewed Journal
ISSN:3048-9792
Volume: 3
Issue: 2
March - April: 2026

समाज को भी आलोकित और संयमित करने की सामर्थ्य रखता है। इस प्रकार योग की व्यक्तित्व निर्माण एवं सुखी समाज के निर्माण में महती भूमिका दृष्टिगोचर होती है।

प्रस्तावना–

योग–विद्या भारतीय आर्ष–ऋषिमनीषा का समग्र–विश्व को दिया हुआ वह अमूल्य उपहार है जो मनुष्य के सर्वविधि उत्थान के मूलमंत्र सी प्रतीत होती है। मनुष्य के उत्थान का अगर सबसे बड़ा कोई कार्य है तो वह है मनुष्यों में मनुष्यता को प्रतिस्थापित करना। वर्तमान युग में समग्र–विश्व हिंसाग्रस्त है। इतिहास के पन्नों को उठाकर अगर परिगणना की जाए तो असंख्य लोग हिंसा की आग में जलकर भस्म हो गए। यह हिंसा मात्र युद्धों या बहिर्हिंसा के रूप में ही दृष्टिगोचर नहीं होती अपितु इसका स्वरूप द्वन्दों के फंदे गले में डाले घटित हो रही आत्म–हिंसा के रूप में भी है। आज का सम्पूर्ण समाज कहीं न कहीं मानसिक और आंगिक दोनों प्रकार से होने वाली हिंसाओं की भेंट चढ़ता हुआ प्रतीत होता है। इस स्थिति में समाज के भव्य और मनुष्यता–बोधक स्वरूप की परिकल्पना वैचारिक–मूल की शल्य–चिकित्सा द्वारा ही सम्भव है, जब वैचारिक–मूल में व्याप्त मलिनता को योग जैसी महान–विद्याओं की उपचार–प्रक्रियाओं द्वारा चित्त से पूर्णतः बहिस्कृत किया जाएगा तब जाकर पूर्णतः समाजोपयोगी, राष्ट्रोपयोगी, सर्वोपयोगी व्यक्तित्व का निर्माण होगा। वह व्यक्तित्व जो क्लेश–रहित हो वह ही परिवार और समाज को क्लेश की प्रवंचना से दूर करने हेतु कार्य कर सकता है। इसीहेतु योगसूत्र के अंतर्गत महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि जो अहिंसा में व्याप्त हो उसकी उपस्थिति में हिंसा दूर हो जाती है–

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।[1]

पा०यो०सू०–2.35

अहिंसा में पूरी तरह प्रतिष्ठित होने पर योगी के सान्निध्य में आने वाले सभी प्राणी अपना स्वाभाविक वैरभाव छोड़ देते हैं। भावों की शुद्धता और व्यक्ति की सिद्धता अपना प्रभाव और वर्चस्व समय के वक्ष पर आलोकित करती है। इस हेतु ही अहिंसक व्यक्तित्व का सानिध्य प्राप्त करने वाले भी हिंसा का परित्याग कर अहिंसक हो जाते हैं। योगसूत्र कहता है कि

[1] पातञ्जल योगदर्शन,2.35

GYANBODH
An International Multidisciplinary Peer Reviewed Journal
ISSN:3048-9792
Volume: 3
Issue: 2
March - April: 2026

सुख–दुख पुण्य–अपुण्य विषयों में क्रम से मैत्री, करुणा, प्रसन्नता व उपेक्षा की भावना से चित्त का प्रसादन होता है।

मैत्री करुणामुदितो पेक्षाणां सुखदुःख।
पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्वित प्रसादनम्।।[2]

योगी समाधि और ध्यान की अवस्था में भले ही सुख–दुख और पाप–पुण्य जैसे विषयों की विस्मृति कर देता हो किन्तु बहिर्वस्था में वह इन तथ्यों का दृष्टा होता है। वह सामाजिक–जनों में इसके प्रभाव को देखता है, क्योंकि उसके व्यवहार में मनुष्य–मात्र ही नहीं अपितु समस्त जीव–जाति के प्रति प्रेम पलता है। वह सुखी लोगों के सुख से सुखी और दुखी जनों के दुख से उसका हृदय करुणा–विगलित हो जाता है। पुण्य–कार्यों में संलिप्त प्राणियों को देखकर उसका हृदय हर्षित हो जाता है, पापियों को देखकर घृणा की जगह उन्हें पापमुक्त देखने की इच्छा उसके हृदय में जन्म लेती है। यह वाक्य जहां योग के प्रभाव से आत्म–शुद्धि की उत्पत्ति का विश्लेषक है वहीं समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार से लेकर समस्त विश्व के कल्याण के अस्तित्व का बीज है। इसीलिए गीता में कहा गया है–

तं विद्या दुःखसंसयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्चेतसा।।[3]

गीता 6.23

अर्थात् जो दुःखरूपी संसार के संयोग से वियोग कराता है तथा जिसका नाम योग है, उसका अभ्यास खेद रहित मन से तत्परता से निश्चय पूर्वक करना चाहिए। इस व्याख्या में संयोग तथा वियोग दोनों को लिया गया है। योगी का कार्य ही सांसारिक उद्विग्नता को झेल रहे व्यक्तियों का उस उद्विग्नता से वियोग कराना है। इन सभी तथ्यों से योग का महत्व प्रतिपादित होता है। इसीलिए योगाभ्यास की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए स्वामी अक्षय आत्मानंद जी कहते हैं कि योगाभ्यास इस विश्व की सरलतम विद्या है। दृढ़ संकल्प शक्ति से यदि इसका

[2] पातञ्जल योगदर्शन,1.33
[3] गीता 6.23

GYANBODH
An International Multidisciplinary Peer Reviewed Journal
ISSN:3048-9792
Volume: 3
Issue: 2
March - April: 2026

प्रतिदिन थोड़ा–थोड़ा सा भी अभ्यास आप करते रहें, तो इसकी सहज उपलब्धियों से चमत्कृत हो उठेंगे।[4] योग मनोदैहिक उपचारों के साथ–साथ सूक्ष्म–भावों का भी परिष्करण और मार्जन कर हमें चित्त की शुद्धता प्रदान करता है। जिससे हमारा व्यक्तित्व निर्मल और समाजोपयोगी बनता है। उक्ति है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन निवास करता है। एक हद तक यह सत्य भी है, किन्तु जब योगाभ्यास की परिदृश्य से देखें तो यह एक ऐसा उपचार है जो स्वस्थ शरीर के साथ स्वस्थ मन का निमित्त तो बनता ही है इसके साथ–साथ हमें आध्यात्मिक उन्नति और सामाजिक उन्नति भी प्रदान करता है। इसीलिए महान योगी स्वामी सत्यानंद सरस्वती योग के उद्देश्य को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि संक्षेप में योग का लक्ष्य है–एक समन्वित व्यक्तित्व का विकास। मनुष्य को बुद्धिसम्पन्न ही नहीं होना है और न ही पूरी तरह से भाव प्रधान ही होना है। दोनों का सुखद संयोग होना चाहिए, अन्यथा जीवन में शांति नहीं रह पाएगी।[5] यदि व्यक्ति पूरी तरह भावात्मक हो जाएगा तो वह उचित अनुचित के विवेक से रहित हो जाएगा और अगर केवल बुद्धि का ही आश्रय ले लेगा तो समाज में भावनात्मक–केंद्र से सबंधित सभी तथ्य समाप्त हो जाएंगे। इसलिए श्रेष्ठ व्यक्तित्व वही है जो भाव और बुद्धि का सामंजस्य स्थापित करता है और योगाभ्यास ऐसी ही परिभाषा वाले समाजोपयोगी व्यक्तित्व के निर्माण का महा–अनुष्ठान है। व्यक्तित्व का निर्माण गहराइयों में होता है यह उथला प्रयोजन नहीं है और योग गहराइयों से सूक्ष्म–भावों तक की यात्रा कर उनके परिष्करण का हेतु रचता है। इस संदर्भ को समझाते हुए स्वामी सत्यानंद सरस्वती कहते हैं कि आन्तरिक अनुभव ही अधिक गहरे स्तर की अभिव्यक्ति हैं। स्वप्न निःसंदेह एक अनुभव है। आपका स्वप्न खण्डित–मनस्कता हो सकता है, किन्तु वह आपके अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है।[6] स्वप्न अवचेतन का ही एक हिस्सा है और अवचेतन में अपनी ही विचारात्मकता और चिंतन के अवशेष होते हैं। इस दृष्टि से व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति स्वप्न तक को प्रभावित करती है। योग मूलतः अहं भाव को दूर करता है और बिना अहं भाव के दूर हुए कोई भी व्यक्ति यथार्थ दृष्टा नहीं हो सकता। व्यक्तित्व से विज्ञ होने के लिए अपनी

[4] योगासन और प्राणायाम, स्वामी अक्षय आत्मानंद पृष्ठ संख्या–9
[5] क्रियायोग स्वामी सत्यानंद सरस्वती
[6] कुण्डलिनी योग, सत्यानंद सरस्वती

GYANBODH
An International Multidisciplinary Peer Reviewed Journal
ISSN:3048-9792
Volume: 3
Issue: 2
March - April: 2026

प्रभुता को समाप्त कर समष्टि में उतरना पड़ेगा। इस तथ्य को उद्धरण स्वरूप में समझाते हुए स्वामी मुक्तानंद अपनी परिचर्चा में कहते हैं कि योग इस बात पर बल देता है कि हमें अपने अहं की प्रभुता को समाप्त कर उसका उचित उपयोग करना चाहिए। रूढ़िगत लिंग–भेद के रूप में अहं स्पष्टतः प्रकट होता है। रूढ़िवादिता के इस तथ्य को समझने के बाद हम यह जान सकते हैं कि हमारे व्यवहार किस सीमा तक समाज द्वारा निर्धारित हैं और हमारा मूल स्वभाव क्या है।[7] योग के अनुसार व्यक्तित्व सिर्फ शरीर और मन नहीं है बल्कि शरीर, मन और आत्मा का संयुक्त रूप है। आत्मा–तत्व इस लिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि वह शरीर तथा मन की क्रियाओं को निर्धारित करती है। योग इसीलिए शारिरिक, मानसिक और आध्यात्मिक त्रिस्तरीय सुदृढ़ता पर कार्य करता है। व्यक्तित्व का निर्माण इन तीनों में से किसी एक के कमतर रह जाने पर सम्भव नहीं है, बल्कि इन तीनों के द्वारा ही सम्भव है और इन तीनों के विकास की प्रक्रिया एक दूसरे पर निर्भर है। इस दृष्टि से योग शारिरिक विकास के साथ–साथ मानसिक और आध्यात्मिक विकास की भी बात करता है क्योंकि इन तीनों अवयवों में से किसी एक की लघुता या अपूर्णता में व्यक्तित्व का निर्माण सम्भव नहीं है। इसलिए व्यक्तित्व के निर्माण की पृष्ठभूमि का अगर सबसे तार्किक और सम्पूर्णता से विवेचन प्राप्त होता है तो वह योग की आधारभूमि पर प्राप्त होता है। व्यक्तित्व के निर्माण में इस आधुनिक युग में यदि कोई सबसे प्रबल–कारक दृष्टिगोचर होता है तो वह भी योग है। इस सम्पूर्ण विवेचना के उपरांत योग–विद्या की महत्वाकांक्षा और लोक के प्रति उसकी महाकल्याणकारी–भूमिका व्यक्तित्व के निर्माण के रूप में सामने आती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1–पातंजल योगसूत्र, नंदलाल दशोरा, प्रकाशक–रणधीर प्रकाशन हरिद्वार, संस्करण–1997, सूत्र–संख्या–2.35

2–पातंजल योगसूत्र, नंदलाल दशोरा, प्रकाशक–रणधीर प्रकाशन हरिद्वार, संस्करण–1997, सूत्र–संख्या–1.33

3–श्रीमद्भगवतगीता गीताप्रेस गोरखपुर–6.23

[7] नव योगिनी तंत्र, स्वामी मुक्तानंद पृष्ठ संख्या–67

GYANBODH
An International Multidisciplinary Peer Reviewed Journal
ISSN:3048-9792
Volume: 3
Issue: 2
March - April: 2026

4–योगासन और प्राणायाम, स्वामी अक्षय आत्मानंद, प्रतिभा प्रतिष्ठान नई दिल्ली, संस्करण–2002, पृष्ठ संख्या–9

5–स्वामी सत्यानंद सरस्वती, क्रियात्मक योग, प्रकाशक–योग पब्लिकेशन्स् ट्रस्ट, मुंगेर बिहार संस्करण–2024–पृष्ठ संख्या–05

6–कुण्डलिनी योग, स्वामी सत्यानंद सरस्वती, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, संस्करण–2002, कुण्डलिनी एवं तंत्र परिचय, पृष्ठ संख्या–1

7–नवयोगिनी तंत्र, स्वामी मुक्तानंद, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, संस्करण–2003, पृष्ठ संख्या–67